कुरु-वन-दहन नाटक

एक गद्य पद्य मय, वीररस
प्रधान नाटक

लेखक

बदरीनाथ भट्ट बी. ए.

प्रकाशक

राम भूषण प्रेस, आगरा ।

१९१२

मूल्य ॥) आना

FOREWORD.

—:o:—
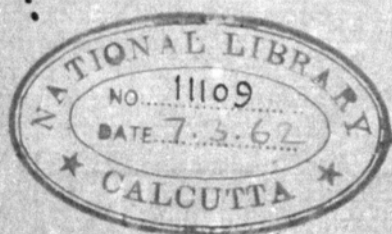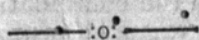
WHILE preparing for my degree examination, I read and heard a great deal about the Venisamhara, a Sanskrit drama in six acts, written by Bhatt Narayan who flourished about the 8th or 9th century A. D. Naturally I had a desire to read it, and when I did so I found it not only very charming and instructive but a brief summary, of almost the whole of the Mahabharata from Udyogaparva onwards. At once the idea of translating it into Hindi entered my head, but realising my own weaknesses soon after, I had to give up that idea, as, to adapt it in translation—however free it might be—to suit modern tastes seemed a little too difficult for my immature pen. Instead, I resolved to try another course which, I hoped, would allow more freedom to my pen, that is, of remodelling it. The present work is the result of that attempt. I have completed it in seven acts instead of six, and have tried to make it suit modern tastes and conditions as far as possible, by means of various additions, omissions, and alterations in the speeches of the Dramatis Personæ. I have even introduced some new characters together with some

humourous dialogues wherever I thought necessary. In fact, I have tried to make this work a type of the combination of English and Sanskrit Dramaturgy. Wherever the defect seemed unaccountable, and wherever the exigencies of the drama required I filled the wide gaps between one Act and another of the Venisamhara by introducing new characters. So the whole work, as it stands, is widely different from the Venisamhara in form and matter, although the main plot has been based on that of the Sanskrit drama.

One word as to the language. I have used ordinary Hindi throughout the whole work. I am not a poet, nor do I imagine myself to be one, yet my attempt at versification is not the very first, and I have introduced verses, wherever occasion required, in Khariboli or simple Hindi. Only one song, that is sung by Charans, has been put in simple Braja Bhasha as a tribute to it, and which, I hope, every body can understand.

When engaged in the present work my attention was drawn to a Hindi translation of the Venisamhara by Pt. Gadadhar Malviya. I went through it and utilised it whenever I thought expedient. Hence my thanks are due to the learned Panditji.

The present work is my first attempt in the field of literature and hence if it meets even with indulgence at the hands of the Hindi public, I shall be much gratified and shall consider my labours amply rewarded.

AGRA:
18th December, 1912.

B. N. B.

प्रस्तावना

संस्कृत में बेणीसंहार एक बीररस-प्रधान नाटक है। उस में महाभारत-युद्ध की कथा है। उसी की सहायता से यह कुरुवन-दहन नाटक तयार किया गया है। इस को यदि बेणीसंहार का रूपान्तर कहें तो भी अनुचित न होगा। इसे पढ़ने पर पाठकों को मालूम होजायगा कि उपर्युक्त संस्कृत नाटक की सहायता से लिखे जाने पर भी इस का नाम बदलना सर्वथा उचित ही हुआ है, क्योंकि उस में और इस में बड़ा अंतर है-कितने ही नये व्यक्ति, कितनी ही नई बातें इस में संमिलित करदी गई हैं और बेणीसंहार के कितने ही पात्र और कितनी ही बातचीत इस में नहीं रक्खी गई है; उस में छः अंक हैं, इस में सात हैं; उस में द्रोपदी के केशों का भीम द्वारा बांधा जाना ही नाटक की कथा का केन्द्र माना गया है, इस में यह बात नहीं है।

उसकी और इसकी शैली में भी बड़ा भेद है। यह अंगरेज़ी ढंग पर एक्ट (अंकों) तथा सीन (दृश्यों) में विभक्त किया गया है, जिससे खेलने में भी सुगमता पड़े। अंगरेज़ी नाट्य-रचना-पद्धति संस्कृत-नाट्य-रचना-पद्धति से कहीं उन्नत तथा समयोपयुक्त है, इसलिये उसका ही अनुसरण करना उचित समझा गया।

इस में जहां कहीं ठीक समझा तुकबंदी भी सन्निविष्ट करदी गई है। यह सब बोलचाल की भाषा में ही है; चारणों द्वारा गाया गया केवल एक ही गीत सीधी सादी व्रजभाषा में है जो, आशा है कि, सब की समझ में आजायगा।

इसकी मूल कथा का प्रारंभ महाभारत के उद्योग पर्व से होता है जब कि कंचुकी द्वारा भीम को यह सूचित कराया गया है कि दुर्योधन की सभा में कृष्ण जी का संधि-प्रस्ताव लेकर जाना निष्फल हुआ। वहां से लगाकर कौरवों के पूर्ण पराजय तथा दुर्योधन के मारे जाने तक की कथा इस में है। इसीलिये इस नाटक का नाम 'कुरुवन-दहन' रक्खा गया है। यह कौरव-पांडव-युद्ध की कथा शिक्षित तथा अशिक्षित हिन्दुओं में इतनी प्रसिद्ध है कि इस प्रस्तावना में इसका सारांश देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

आगरा
१८—१२—१२

ब. भ.

संशोधन पत्र

पृष्ठ	लइन	अशुद्ध	शुद्ध
२	२१	तब	तव
,,	२२	शत्र	शत्रु
१२	१	तव	तब
,,	१२	पांचली	पांचाली
१३	७	कंचकी	कंचुकी
२०	२	जो	जा
२२	१३	हैं	है
५०	अंतिम	कस	कैसे
६०.	३	सग्राम	संग्राम
७३	१	कृष्णा	कृष्णा
७७	१६	यहा	यहां
८३	६	घनुष	धनुष

इनके अलावा 'ब' और 'व' की भी कितनी ही ग़लतियां रह गई हैं, पाठक कृपया उन्हें सुधारलें ।

नाटक के मुख्य पात्र

(पुरुष)

दुर्योधन—धृतराष्ट्र का बेटा, कौरवों का राजा।

दु:शासन—दुर्योधन का छोटा भाई।

द्रोणाचार्य—कौरव तथा पांडवों के गुरु।

अश्वत्थामा—उनका पुत्र।

कृपाचार्य—अश्व० के मामा।

अंगराज कर्ण—दुर्योधन का मित्र।

शल्य—मद्रदेश का राजा, दुर्योधन का सहायक।

वृषसेन—कर्ण का पुत्र।

विदुर—धृतराष्ट्र के मंत्री।

संजय—धृतराष्ट्र का सारथी।

जयद्रथ—सिंधदेश का राजा, दुर्योधन का सहायक।

विनयंधर—कौरवों का पुराना कंचुकी।

वृकराज—कौरवों के गुप्तचरों का अफ़सर।

बुद्धि प्रकाश—कौरवों का एक गुप्तचर।

अश्वसेन—द्रोण का सारथी।

युधिष्ठिर आदि पांचों पांडव।

श्रीकृष्ण।

अभिमन्यु—अर्जुन का लड़का।

धृष्टद्युम्न—द्रोपदी का भाई।

पांचालक—पांडवों का एक दूत।

जयंधर—पांडवों का पुरानी कंचुकी।

बुधक—पांडवों का एक नौकर।

सूत्रधार, नट, चारण, कंचुकी नौकर चाकर आदि।

(स्त्रियां)

द्रौपदी—पांडवों की स्त्री।

बुद्धिमतिका—उसकी सखी।

कुंती—दुर्योधन, भीम तथा अर्जुन की माता।

उत्तरा—अभिमन्यु की स्त्री।

गांधारी—कौरवों की माता।

भानुमती—दुर्योधन की स्त्री।

सुवदना—उसकी सखी।

विहंगिका—एक दासी।

दुःशला—दुर्योधन की बहिन, जयद्रथ की भार्या।

जयद्रथ की माता, सखी आदि।

कुरु-वन-दहन नाटक

एक्ट १

(सीन १ स्थान-वन)

(प्रवेश सूत्रधार)

सूत्रधार— (भैरवी)

हे प्रभु दीनदयालु दया निज हम दासों पर कीजे,
नाट्यकला-उद्धार करें वह शक्ति हमें अब दीजे,
निज हिन्दी-हित-साधन-हित यह नाट्य समाज हमारी,
सदा रहै कटिबद्ध यही, प्रभु, वर दीजे उपकारी,
हे जग-नाटक-सूत्रधार अब ऐसी आशिष दीजे,
जिससे सकल समाज हमारे तुच्छ खेल पर रीझे ॥

(प्रवेश नट)

नट—क्यों जी यह क्या गड़बड़ मचा रक्खी है ? जानते नहीं कि दर्शक लोग तुमारी इस बेसुरी तान से उकता गये हैं, और चाहते हैं कि नाटक शीघ्र ही प्रारम्भ

कर दिया जाय और, इधर देखो तो, श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर के दूत बनकर दुर्योधन के यहां पहुंचने का समय भी होगया है।

सूत्र—अहा ! धन्य है २, आज कौरव पांडवों की आपस की फूट नष्ट करने के लिये श्री कृष्ण जी कौरवों की सभा में गये हैं, द्वेष रूपी अग्नि में शांति रूपी जल की बर्षा करके इस आपस की महा अनर्थ-कारिणी फूट का बीज भगवान आजही बहाकर नष्ट कर देंगे ऐसी आशा होती है पर देखो तो, ये कौन आरहे हैं ?

(दुर्योधन के दो चारणों का प्रवेश)

नट—क्यों जी तुम कौन हो ? जो इस तरह यहां घुसे चले आते हो।

१ चारण—भाई क्रोधित क्यों होते हो, हम कोई चोर थोड़ा ही हैं, हम तो:—

दुर्योधन की सेवा करते।
चारण लोग कहाते हैं

दूसरा—
अपने नृप का कीर्ति-गान कर
उसका यश फैलाते हैं।

सूत्र—ओ हो, तब तो आप भी हम से ही निकले।

नट—अच्छा देखें कैसा गाते हो, गाओ तो।

दोनो चारण— (दरबारी)

नृप तब कीर्ति-ध्वजा फहराय,
तब बल-विक्रम-चकित शत्रुदल आपहि आप नसाय,

धन्य २ धृतराष्ट्र सुतन कौं जिहि यश चंहु दिसि छाय;
कियो सारथक नाम सुयोधने युद्ध कला दरसाय,
रहो कुशल तुम नित्य महीपति, यश कौमुदी बढ़ाय,
नृप तव कीर्तिध्वजा फहराय।

(नेपथ्य में)

अरे टुकड़ खोर !
लाक्षागृह में आगलगाई जिस पापी ने,
क्रूर, कृतघ्नी, कुटिल पांडुकुल-संतापी ने,
नाना अत्याचार किये विष हमें खिलाया,
छल से छीना राज हमें वनवासदिलाया,
खिंचवाये जिसने द्यूत में द्रुपदसुता के कचवसन !
क्या जीवित रहते भीम के रहे सुयोधन कुशल-तन ?

नट—अरे! यह शब्द कहां से आया ?

सूत्र— (पीछे देखकर) अरे! श्री कृष्ण मेल करने गये हैं इस से क्रोधान्ध होकर भीमसेन सहदेव को साथ लिये इधर ही चलाआताहै—भागो यहां से (सब भागगये)

(प्रवेश-भीम और सहदेव का)

भीम—अरे टुकड़ खोर,
लाक्षागृहमें आगलगाई जिस पापीने,(इत्यादि-फिर कहता है)

सहदेव—(विनीतभाव से) भैया, क्षमाकरो, इन मूर्ख चारणों को बकने दो, इन का तो यही काम है, जिसका खाते हैं उसका गाते हैं ।

भीम—(क्रोध से) नहीं २, कौरव आप लोगों के भाई हैं,

आप उन से अवश्य मेल कीजिये, वे निस्सन्देह मेल करने के लायक हैं।

सह—(क्रोधसे) भैया!

मेल मेल की बात सब, धर्मराज का खेल,
कुटिल कौरवों से कभी हम न करेंगे मेल।

भीम—(क्रोधसे) बस, मैं तो आप लोगों से आज अलग हुआ, क्योंकि,

बचपन से है बढ़ा हुआ जो मम विरोध कुरुओं के साथ,
धर्मराज इत्यादि, तुमारा नहीं किसी का उस में हाथ,
करो संधि तुम भीमसेन तो रण से मुख नहिं मोड़ेगा,
जरासंध-उर-संधि सदृश निश्चय उसको भी तोड़ेगा।

सह—(बिनीत भाव से) आर्य, आपके इस क्रोध के कारण राजा युधिष्ठिर जी को दुःख होता है।

भीम—(हंसकर) क्या राजा दुखी होते हैं? क्या वे दुखी होना भी जानते हैं? यदि वे दुखी होना भी जानते तो हमारा आज यह हाल क्यों होता?(क्रोध से) देखो,

पापी दुःशासन ने खींचा द्रुपद-सुता का चीर,
दुर्गति उसकी देख सभा में बने रहे नृप धीर,
वल्कल वसन लपेट विपिन में फिरा किये बेहाल,
कन्द, मूल, फल खाय बिताया वनोवास का काल,
गुप्त रूप से नृप बिराट के किया भवन में बास,
मान प्रतिष्ठा खोय बिताये पूरे बारह मास,
तब न खिजाये दुर्योधन पर जो है सब का मूल,
अब मुझ पर रिसियाना उनका—है बस भारी भूल।

इसलिये तुम जाओ और क्रोधाग्नि में जलते हुए भीम के बचन उनसे कहो।

सह—आर्य ! क्या कहूं ?

भीम—यह कहो कि,

भीम नहीं है आज्ञाकारी,
ऐसी निन्दा सदा हमारी,
आप सबों में जो थे करते,
ध्यान न मम बचनों पर धरते,
वही भीम–मैं गदा ग्रहण कर,
संधि बचन को तोड़ ताड़ कर,
कुरुदल का संहार करूंगा,
मारूंगा, न विचार करूंगा।

इसलिये न आज एक दिन आप मेरे बड़े हैं और न मैं आप का आज्ञाकारी सेवक (अहंकारसे घूमता हुआ चला गया)

सह—(आपही आप) मालूम होता है कि भीमसेनजी द्रोपदी के घरमें गये, अच्छा तो जब तक वे न लौटें तब तक मैं यहां ही खड़ा रहूं।

भीम—(लौटकर) सहदेव तुम जाओ और महाराज की आज्ञा करो मैं भी आयुध-घर में से आयुध ग्रहण करता हूं।

सह—आर्य, यह तो द्रोपदी का घर है।

भीम—क्या यह द्रोपदी का घर है, आयुध घर नहीं है? अच्छा, तो द्रोपदी से भी कुछ सलाह करनी है (प्यार से) वत्स सहदेव, तुम भी चलो।

सह—जो आपकी आज्ञा। (गये)

सीन दूसरा ।

(स्थान द्रौपदी का घर)

(प्रवेश भीम और सहदेव का)

भीम—सहदेव, महाराज कौरवों से मेल करना चाहते हैं इस बात से मेरा जी जलता है, तुम आपही सोच देखो कि ऐसे धूर्तों से जो सदा हमें दुःख पहुंचाने की चेष्टा किया करते हैं मेल करना कहां तक न्याय-संगत है।

(क्रोध से बैठना चाहता है)

सह—(संभ्रम से) भैया, यह आसन पड़ा है, इस पर थोड़ी देर बैठ कर कृष्णागमन की प्रतीक्षा कीजिये।

भीम—(बैठकर) सहदेव, कृष्णागमन से मुझे कृष्ण जी की भी याद आयी जो कि संधि का प्रस्ताव लेकर कौरवों के यहां गये हैं। क्यों जी वे किस प्रकार से संधि करने वहां भेजे गये हैं ?

सह—आर्य, यदि कौरव पांच गांव देदें तो संधि होजायगी यही धर्मराज का प्रस्ताव है।

भीम—हा, किस प्रकार इन अजातशत्रु महाराज का तेज इस अधोगति को प्राप्त हुआ है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं, मेरा तो हृदय इस के विचार मात्र से ही कांपता है, वत्स, यह तो न तुमारे कहने योग्य है और न मुझ भीम के सुनने योग्य, (संभलकर)

क्षात्र तेज अति उग्रको, जानें सब संसार,
क्या उसको भी भूपने दिया द्यूत में हार ?

(नेपथ्यमें)

"स्वामिनी ! बचपनसे कौरवों के बैरी भीमसेन आपका दुःख अवश्य दूर करेंगे, धैर्य रखिये ।"

सह—(ध्यान से सुन कर और देखकर) अरे, यह तो द्रोपदी आखों में आंसू भरें इधर चली आती है, यह तो बुराहुआ

जो चंड क्रोध चपला समान
है भीमसेन में विद्यमान,
वर्षा-घन सम गर्जन मचाय,
कृष्णा देगी उसको बढ़ाय ।

(सखी के साथ कृष्णा का प्रवेश)

सखी—स्वामिनी, भीमसेन जी अवश्य ही आप के दुःखों का मूलोच्छेदन करेंगे क्यों कि उनका बचपन से ही कौरवों से बैर है, देखिये तो वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर कुछ क्रोधित से दिखा....

(द्रोपदी सखी को चुपरहने का इशारा कर एक ओर खड़ी होजाती है)

भीम—(इनकी बातों पर ध्यान न देकर)

क्षात्र तेज अति उग्रको जानें सब संसार,
निश्चय वह भी भूपने दिया जुए में हार,

क्या पांच गांव लेकर ही संधि होजायगी ? क्या सब कौरवों के सिर मेरी गदा के प्रहार से इस प्रकार चकना चूर न होंगे जैसे कि मूसल के नीचे धान? क्या पापी दुःशासन की छाती भीमसेन की गदा के आघात से लहू बहांकर और वही उसे पिलाकर तृप्त न करेगी? क्या दुर्योधन की दोनों जंघाओं को चकना-

चूर करके द्रोपदी का बदला चुकाने का भीमसेन को अवसर न मिलेगा? बस समझ लिया

करें संधि नृप, भीमसेन तो रण से मुख नहिं मोड़ेगा,
जरासंध की जैसे तोड़ी, यह भी वैसे तोड़ेगा ।

सह—आर्य, युधिष्ठर जी के पांच गांव मागने का एक गुप्त अर्थ है ।

भीम—कैसा गुप्त अर्थ है, क्या है गुप्त अर्थ ?

सह—भैया, युधिष्ठर जी ने कहला भेजा है कि इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत ये चार और इन के अलावा एक और कोई सा पांचवां गांव दीजिये ।

भीम—तो फिर ?

सह—गुप्त अर्थ यह मालुम होता है कि इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर से निकाल देने का स्थान, वृकप्रस्थ से वह स्थान जहां विषमिश्रित भोजन दिया था, जयन्त से जुआ खेलने का स्थान, वारणावत से जतुगृह दाह का स्थान, इन स्थानों का स्मरण कराया और पांचवें का नाम न गिनाने से पंचत्व देने का स्थान अर्थात् संग्राम मांगा है, इसलिये कौरवों से मेल हो सकने की कोई संभावना नहीं है ।

भीम—इस से क्या लाभ होगा ?

सह—ऐसा करने से संसार को यह विदित हो जायगा कि युधिष्ठिर बड़े नम्र हैं जो कुल को नष्ट होने से बचाने के लिये केवल पांच गांव ही लेने को तयार हैं, पर

दुर्योधन बड़ा दुष्ट है, कुलक्षय से नहीं डरता है, इसलिये पांच गांव भी न देकर सारा राज्यही हड़प लेना चाहता है।

भीम—इन बातों से कुछ लाभ नहीं। कौरवों से संधि होना असंभव है यह बात तो तभी खुल गयी थी जब कि हम लोगों ने वनोबास को जाते समय उनके मारने की प्रतिज्ञा की थी, और सब कोई जान भी गये हैं कि धृतराष्ट्र का नाश अवश्य होने वाला है।

सह—(लज्जित सा होकर शिर झुकाता है)

भीम—क्या तुम्हें लज्जा आती है ? अरे मूर्ख !

रिपुकुल-क्षय का यह ध्यान ही
कर रहा बस लज्जित है तुम्हें ! :
न कच-कर्षण के अपमान से
तनिक भी तुम लज्जित हो सके !!

द्रो०—(अलगही अलग) नाथ, सभा के बीच में मेरे केश खींचे गये इस बात की इन लोगों को कुछ भी लज्जा नहीं है-कहीं आप भी न भूल जाना !

भीम—वत्स, पांचाली क्यों देर लगा रही है ? मेरा मन तो रण में शीघ्र ही जाने को करता है।

सह—आर्य, द्रौपदी तो देर की वहां खड़ी है, आपने क्रोध के कारण उधर निगाह न की।

भीम—(देखकर,सादर) तुम आगयी थीं पर तो भी क्रोध के कारण मैं ने तुमारी ओर दृष्टिपात न किया, नाराज़ मत होना।

द्रोपदी—नाथ, आपके उदासीन रहने से मैं नाराज़ होती हूं क्रोध करने से नहीं ।

भीम—यदि ऐसी बात है तो अपने को सब दुःखों से रहित समझो ।

द्रोपदी—(ठंडी सांस लेती है)

भीम—आज मैं तुमको इतनी दुखी क्यों देखता हूं ?

द्रोपदी— (कालिंगड़ा)

कैसे अपनी व्यथा सुनाऊं,
राज-भवन-वासिनि मैं कैसे कानन में सुख पाऊं,
कुचली कमल कली सम हिय को कैसे, हा, समझाऊं,
खुले हुए इन कच समूह में कैसे गांठ लगाऊं,
दुःखाकुल व्याकुल मन को हा कैसे धैर्य बंधाऊं ।

भीम—(केशों की ओर देखकर) हा, हमारे जीतेजी भी द्रोपदी की यह दशा !

यदपि पांडव जीवित हैं सभी,
निकट हैं, सब भांति निरोग हैं
पतिरता, फिरभी, द्रुपदात्मजा
विविध कष्ट रहे नित भोगती !!

द्रो०—(दुःख से) नाथ, कौन तुमारे सिवाय मेरा दुख में साथी है ?

सखी—(हाथ जोड़कर) कुमार, केश और वस्त्र खिंचने से भी अधिक दुखदायी एक कारण आज हुआ ।

भीम—क्या इससे भी अधिक कोई कारण हुआ ? तो शीघ्र

कहु कि कौरव वंश में किसको अपने प्राण भारी लगते हैं।

सखी--तो सुनिये, हे कुमार, आज देवी माता और सुभद्रा आदि के साथ गांधारी को प्रणाम करने गयी थीं।

भीम--ठीक है, बड़ों का अभिवादन करना ही चाहिये, अच्छा फिर ?

सखी--लौटती समय भानुमती ने इन्हें देखा

भीम--(क्रोध से) आः, शत्रु की स्त्री ने देखा ! प्रिया के लिये क्रोध की जगह है, तब क्या हुआ जल्दी कहु।

सखी--तब उसने इनको देखकर, सखी की ओर मुख करके गर्व से हंसकर कहा--

भीम--ओहो, केवल देखा ही नहीं बल्कि हंसकर कुछ कहा भी ? अरे क्या करूं ? अच्छा फिर क्या कहा जल्दी कह

सखी--उसने कहा कि हे याज्ञसेनि, सुना है कि तेरे पति पांच गांव पाने की प्रार्थना करते हैं, तो फिर क्यों नहीं अपने केश बांध लेती ?

भीम--सहदेव ! सुना ?

सह--इस में क्या कहा जा सकता है वह तो दुर्योधन की स्त्री ही है देखो,

निज पति के सँग नित रहतीं जो कुलनारि,
पति के से होते उनके सभी विचार,
हो लता मनोहर यदि विषतरु के पास,
तो वह भी करती चेतनता का नाश।

भीम—बुद्धिमतिके ! तब देवी ने क्या कहा ?

सखी—कुमार, यदि यह दासी साथ न होती तो उन को कुछ कहने की आवश्यकता होती।

भीम—अच्छा तो फिर तूने क्या कहा ?

सखी—कुमार मैंने कहा कि हे भानुमती, जब तक तुमारे सबके केश न खुलेंगे और जब तक पूर्णतया **कुरुवनदहन** न हो जायगा तबतक देवीके केश कैसे बंध सकते हैं ?

भीम—(प्रसन्न होकर) अच्छा उत्तर दिया, वहुत अच्छा उत्तर दिया, हे बुद्धिमती, तू ने वही कहा जो हमारे नौकरों के योग्य था (कंगन उतार कर देता है) हे प्रिया पांचली (अधीरता से आसन से उठता हुआ) अब विषाद मत करे, अधिक क्या कहूं, जो कुछ मैं करूंगा उसे तू शीघ्र ही सुनलेगी,

भीषण रण में दीर्घ भुजाएं घुमा घुमाकर,
चंचल चंड गदा को तांडव नृत्य कराकर,
दुर्योधन की जंघाओं के खंड खंड कर,
शत कंटकमय कुरुवन को संपूर्ण दहन कर,
घने रुधिर से लिप्त भुजाओं से तव, प्यारी,
बांधूगा ये केश, हरूंगा पीड़ा सारी।

द्रो — आपके क्रोध के सन्मुख यह कुछ भी दुष्कर नहीं है, यदि आप के भाई भी आपके इस काम से सहमत हों।

सह— मैंने तो इसे स्वीकार किया, मैं तो सहमत हूं।

(नेपथ्य में बड़े भारी कोलाहल का होना और सबका विस्मय से सुनना)

भीम—प्रलय काल के समान यह घोरगर्जना का शब्द कहां से आया ?

(सम्भ्रान्त कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—कुमार! भगवान वासुदेव (सबका खड़ा होना)

भीम—कहां हैं श्री भगवान ?

कंचुकी—भगवान को पांडवों के पक्ष में देखकर दुष्ट दुर्योधन ने उन के बांधने का प्रयत्न किया (सबका विस्मित होना)

भीम—क्या बांध लिये गये ?

कंचुकी—नहीं २, बांधने का यत्न कियागया ।

भीम—श्री भगवान ने तब क्या किया ?

कंचुकी—उन्हों ने अपने दिव्य तेज से कौरवों को मूर्छित कर दिया, और अब हमारे डेरों में लौट आये हैं और आपको शीघ्र ही देखने की इच्छा रखते हैं ।

भीम—(हंसकर) क्या दुरात्मा सुयोधन ने भगवान के बांधने की इच्छा की ! (ऊपर देखकर) अरे दुरात्मा ! कुरुकुल पांसल! जब कि तूने इस तरह मर्यादा का उल्लंघन किया है तब तो तेरा निश्चय शीघ्र ही नाश होने वाला है, और पांडवों का क्रोध तो उस नाश का केवल एक बहाना होगा ।

सह—आर्य! क्या मूर्ख दुर्योधन भगवान की शक्ति से अपरिचित है ?

भीम—वत्स, यह दुरात्मा खल उन अपरिमित शक्तिशाली को क्या जान सकता है, यह तो अज्ञान और अंधकार से वैसे ही अंधा हो रहा है। कंचुकी! सब लोग इस समय क्या कर रहे हैं?

कंचु—आप स्वयं ही चलकर देखलें कि महाराज क्या कर रहे हैं।

(सब गये)

सीन ३

(स्थान-वन, शिविरों के पास)

(एक डोंडी पीटने वाले का प्रवेश)

डोंडी वाला—(ढोल पीटकर) हे हे द्रुपद्, विराट, वृष्णि, और अन्धकों के नायक! और हे सहदेव इत्यादि हमारे अक्षो-हिणी-पतियों! और हे कौरव-सेना के प्रधान नेताओ! सुनो कि,

मंदी रही जो सत्यव्रत के भंग के भय से सदा,
विस्मृत रही, कुल पर कभी जिससे न आवे आपदा,
वह, द्रोपदी के, द्यूत में कचवसन-कर्षण से लगी,
क्रोधाग्नि **कुरुवनदहन** को फिर है युधिष्ठिर में जगी।

(भीम इत्यादिका द्रोपदी के साथ प्रवेश)

भीम—क्या कहारे क्या कहा?

डोंडी वाला—हे हे हमारे सहदेव आदिक अक्षोहिणीपतियो! हे पांडव और कौरव सेना के योधाओ! सुनलो कि—

जो, सत्यव्रत के भंग के भय से अभीतक मंद थी,
कुलबृद्धि हित चित में न बाकी बची जिसकी गंध थी,

वह, कुरु-सभा में, द्रोपदी-कच-वसन-कर्षण से लगी
क्रोधाग्नि **कुरुवनदहन** को फिर नृप युधिष्ठिर में जगी।

भीम—राजा की क्रोधाग्नि बे रोक टोक निरंतर बढ़े।

(डोंडीवाला गया)

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

द्रो.—(विस्मयसे) हे नाथ यह प्रलय के मेघ कासा ~~शब्द~~
आज बार २ क्यों होता है?

भीम—देवि, यह जो एक यज्ञ हुआ चाहता है उसी का सूचक है।

द्रो.—(विस्मय से) कौन सा यज्ञ?

भीम—रणयज्ञ,

याजक हैं हम चारों भाई, हरि इसके आचार्य,
सपत्नीक दीक्षित होंगे इस क्रतु में नरपति आर्य,
कौरव हैं बलि-पशु, फल इसका प्रिया-क्लेश-उपशांति,
राज-निमन्त्रण हित फैलातीं ये दुंदुभी अशांति।

सह.—आर्य! तो अब हम बड़ों की आज्ञा से अपने विक्रम के अनुरूप कर्म करने जायं?

भीम—वत्स, आर्य युधिष्ठिरजी की आज्ञानुसार हम तो काम करने को तयार हैं-चलो-हे देवि, अब हम कुरुकुल का नाश करने जाते हैं।

द्रो.—(आंसूरोककर) देवासुर संग्राम में जो मंगल हरि को प्राप्त हुआ था वही आपको भी हो।

सखी—देवी जी यह भी कहती हैं कि लड़ाई से लौट कर आप लोग मुझे आश्वासन देना।

भीम—झूठे आश्वासन से क्या ? देखो
कुरुकुल को निश्शेष करूंगा
तबही धैर्य धराऊंगा,
यदि ऐसा न कर सका तो
निज लज्जित मुख न दिखाऊंगा ।

द्रौ०—नाथ, मेरे अनादर और क्लेशों का स्मरण कर कहीं इतने कुपित न हो जाना कि बिना ही शरीर को सुरक्षित किये ही शत्रु की सेना में घुस पड़ो, क्योंकि सुना है कि शत्रु की सेना में बहुत होशियारी से जाना चाहिये ।

भीम—हे सुक्षात्रिये ! हम इस रण में घूमने को समर्थ हैं; देख,
युगल पक्ष के हत-वीरों की मांस-कीच में,
चलें रौंदते फंसे रथों को, वीर बीच में,
झररर झररर रुधिर वसा जहं झरें निरंतर,
घुट घुट पीकर करें जीव चीत्कार भयंकर,
जिसमें चंचल शस्त्र चपल रणधीर नचावें,
त्राहि त्राहि कर घायल जन अति रुदन मचावें,
भरी खचाखच अस्थि,संकुलित शिर-समूह से,
होते हैं उत्पन्न भ्रमर अति रौद्र रूप से,
अट्टहास कर कर कराल विकराल कालिका,
चुन चुन कर करती धारण नर-मुंड-मालिका,
जिस में रुंड मुंड मतवाले करते तांडव,
पंडित हैं ऐसे रण-सिंधु-तरणं में पांडव ।

(सब गये)

एक्ट २

(सीन १-स्थान-वन)

[प्रवेश दो यात्रियों का]

पहिला—क्योंजी महाशय, क्या आप मुझे बतला सकते हैं कि मधुपुरी का कौन सा मार्ग है ?

दूसरा—क्यों जी, क्या आप बतला सकते हैं कि दधिपुरी का कौनसा मार्ग है ? क्यों कि पहिले मैं तो पूछलूं, पीछे आप को बताऊं।

पहिला—नहीं २ महाशय, आप हंसी न कीजिये मैं आप को अनेक धन्यबाद दूंगा, क्या करूं और तो कुछ मेरे पास है नहीं, पर कृपा करके जल्दी बतला दीजिये, क्योंकि मुझे वहां बहुत शीघ्र जाना है।

दूसरा—तो शीघ्र चले जाइये।

पहिला—कौनसा मार्ग है ?

दूसरा—वही जो पहिले था।

पहिला—शोक है कि मुझे पहिला मार्ग नहीं मालूम है।

दूसरा—अजी पहिले मुझे भी नहीं मालूम था।

पहिला—तो कृपा करके शीघ्र बतला दीजिये कि कौनसा मार्ग है।

दूसरा—तो कृपा करके शीघ्र बतला दीजिये कि कौनसा काम है।

पहिला—अजी काम यह है कि आज मैं कुरुक्षेत्र से आरहा हूं, और वहां कौरव पांडवों में संग्राम हो रहा है।

दूसरा—क्या संग्राम हो रहा है ? क्या कृष्णजी के जाने पर भी कौरवों ने मेल नहीं किया ?

पहिला—अजी, मेल ? मेल कैसा वहां तो कई दिन से खून ख़राबी मची हुई है।

दूसरा—खून ख़राबी ! भलाजी, क्या हुआ ? कुशल तो है ?

पहिला—लड़ाई में कुशल कैसी, कुशल तो आपस की फूट के पास नहीं फटकती।

दूसरा—अच्छा तो वहां के क्या समाचार हैं ?

पहिला—समाचार ये हैं कि अजित विक्रम परशुराम के जीतने वाले पितामह भीष्म ने मारे वाणों के पांडवों के छक्के छुड़ा दिये।

दूसरा—अच्छा...,इक्के छुड़ा दिये, बेगार में पकड़े गये होंगे ?

पहिला—पांडवों के छक्के छुड़ा दिये छक्के।

दूसरा—अच्छा फिर ?

पहिला—कई दिनों तक पांडवों की बुरी दशा रही अन्त में कृष्ण जी की सहायता से अर्जुन ने मारे वाणों के भीष्म के जर्जर शरीर को छिन्न भिन्न करके उसे पंचतत्वों में मिला दिया।

दूसरा—क्या कहा ? हाय तो पितामह भीष्म अब इस संसार में नहीं रहे, अच्छे थे वेचारे, अच्छा फिर ?

पहिला—फिर द्रोणाचार्य ने एक व्यूह बनाया कि जिसमें कोई न घुस सके-और अभिमन्यु ने उसे तोड़ दिया।

दूसरा—तोड़ दिया ? हाय बना बनाया काम बिगाड़ दिया।

पहिला—अजी सुनो तो, फिर उस महावीर अभिमन्यु ने बहुत से कौरव दल के बीरों की धज्जियां उड़ादीं।

दूसरा—अच्छा किया, वाहरे अभिमन्यु, अच्छा फिर ?

पहिला—अच्छा फिर कर्ण, जयद्रथ आदिक कौरवों के सेना पतियों ने बेचारे अकेले अभिमन्यु को घेर लिया और उसके प्राण निकाल लिये।

दूसरा—हा शोक, कौरव कायरों के लिये लज्जा की बात है।

पहिला—अब अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है कि जयद्रथ को बिना मारे नहीं छोडूंगा।

दूसरा—करने दो, अपनी क्या हानि है? हम कोई जयद्रथ थोड़ाही हैं सो डरें, मेरी तो, भैया, कपड़े की दूकान है।

पहिला—और अर्जुन के रसोइये ने प्रतिज्ञा की है कि जितने लावारसी गधे, घोड़े, या ऊंट मिलेंगे उन सब का सत्यानाश करदूंगा।

दूसरा—ओ हो!

पहिला—सो भाई, इसी लिये मैं भाग आया हूं कि कहीं मुझे कोई गधा घोड़ा या ऊंट न समझले क्यों कि क्रोध में मनुष्य को कुछ का कुछ सूझता है—इस लिये अब तुम झटपट मुझे मधुपुरी का मार्ग बतादो।

दूसरा—अच्छा देखो, मधुपुरी का मार्ग यह है (उंगली के इशारे से बतलाता हुआ) यहां से सीधे जाकर सीधे हाथ को मुड़ना और वहां से बायें हाथ को मुड़कर बायीं आंख मींच लेना, फिर दस कदम उलटे चलना; उसके बाद नाक की सूध में जाकर मधुपुरी में खूब डुबकियां लेना।

पहिला—इस कृपा के लिये धन्यवाद देता हूं।

दूसरा—बहुत अच्छा, अब सवारी बढ़ाइये।

(दोनों गये)

सीन २

(स्थान-दुर्योधन के डेरे)

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—महाराज दुर्योधन ने मुझे आज्ञा दी, कहा कि हे विनयंधर जो देखतो आ कि भानुमती माता गांधारी को प्रणाम करके लौट आयी या नहीं, क्योंकि मैं चाहता हूं कि पहिले उससे मिललूं तब समर भूमि में जाकर अभिमन्यु के मारने वाले कर्ण, जयद्रथ आदि क्षत्रि-प्रवरों का सन्मान करूं। (सोचकर) महाराज उन्हें कैसे सन्मानित करेंगे ? कहीं उपाधियां तो नहीं दे डालेंगे ? कपड़े पहिनने पर भी जैसे मनुष्य का शरीर वह का वही रहता है, उपाधियां लगाने से उसी भांति मनुष्य के नाम में कोई भी परिवर्तन नहीं हो जाता-खैर, अब मुझे शीघ्र जाना चाहिये-आहा ! कैसा बड़ा लम्बा चौड़ा प्रताप है महाराज दुर्योधन का कि जिस के कारण मैं बूढ़ा होने पर भी अपना सब काम ऐसी अच्छी तरह संभाले रहता हूं जैसा कि कोई पांच रुपये महीने का रंग रूट चपरासी, और सच कहता हूं कि महल में मेरा ही सा सब का हाल है, फिर बुढ़ापे की क्या बात ?

(प्रवेश एक नौकर का)

नौकर—कवीश्वर जी क्या कह रहे हो ?

कंचुकी—तूने सच कहा, सोने में यदि सुगंध होती तोभी उसकी इतनी चाहना न होती जितनी कि मेरी इस लिये

है कि मैं कविता करना भी जानता हूं, कवि कहलाना भी सहल है, क्योंकि कहा है कि,

'मित्रो, करना काव्य चित्त का बहलाना है
कवि बनना है कठिन, सहल कवि कहलाना है।

नौकर—कवीश्वर जी यह तो सब हुआ पर अब आप यह बतलाइये कि आप अभी हाल महलों के नौकरों के विषय में क्या कह रहे थे ?

कंचुकी—अरे मैं यह कह रहा था कि महलों में चाहे जवान नौकर हो या बूढ़ा सबकी बूढ़ों ही में गिनती है, क्योंकि वहां तो यह हाल है सुन—हुंः हुंः, कविता करता हूं, हां वहां तो यह हाल है कि :—

(नूतनार्या छन्द)

इतनी ऊंची आखें, तोभी नीचे को है देखना पड़ता।
सुनते हैं कानो से, तोभी काटने पड़ते हैं कान बहरोंके।
शक्ति बहुत रखते हैं, तोभी चलते हैं लकड़ी के बल।
देख भाल कर चलते, तो भी रहता है गिरने का डर।
धनकी आशासे सेवा करते, फिर बिचारे बुढ़ापेने क्या बिगाड़ा है?

नौकर—वाहजी, अतुकान्त कवीश्वर विनयंधर, कवीश्वरोंके गुलाब में कांटे, काव्य-शकट-चक्र, कविता-गाड़ी के बैल, काव्य-कचौड़ी-लवण, काव्य-विशूचिका-कर्पूर, कविता- खाट-खटमल, काव्योद्यान-मारुती, कव्यशिर-चपत, काव्यकूप मंडूक, कविता रूपी दवात की स्याही, धन्य है तेरे गुणों को, तभी राजा तुझसे इतने प्रसन्न हैं।

विनयंधर—(चिल्लाकर) अरी विहंगिका, ओविगिहंका!

(प्रवेश विहंगिका)

विहं—हे विनयंधर क्या कहता है?

विनयंधर—यह पूछता हूं कि क्या देवी भानुमती लौटआई।

विहं—हां...कभी की लौट आई, अब तो वे पूजा करने की तैयारियां करा रही हैं जिसमें उनके पति लड़ाई में जीत जायं।

विनयं.—अच्छा तू जा, बस यही काम था (दूसरे नौकर से) भाई रानी भी खूब रहीं, स्त्री होने पर भी इनका ऐसा स्वभाव! और उधर महाराज को देखिये कि कृष्णजी जिन के सहायक हैं उन पांडवों से तो लड़ाई मोल ली, और करते क्या हैं? महलों में विहार! भला यह भी कोई बात हैं कि:—

(विलक्षण छन्द)

जब से लिया हाथ में फरसा नहीं किसी से हारे,
पर उन परशुराम को भी भीष्म ने था हरा दिया मित्रो,
उन्हीं भीष्म को पांडु सुतों ने सुलादिया शर-शय्या पर,
तोभी शोक नहीं कुछ भी हुआ दुर्योधन नृप के मन में,

किंतु

जिसने मारे फर फर बहुत से वीर थक गया तत्पश्चात्,
टूटा जिसका धनुष और टूटी जिसकी तांत,
उस महावीर विक्रम बजरंगी अभिमन्यु के मारे जानेसे,
राजा जी हैं बड़े सुखी—(इधर उधर देखकर होले से)
क्याछूट आये हैं पागल खाने से?

नौकर—तब तो देवता ही हमारी रक्षा करें।

विनय—तूने सच कहा, अब उनसे जाकर कहदूं कि देवी यहां बैठी हुई हैं-

(दोनो गये)

सीन ३

स्थान—एक उद्यान

(प्रवेश कंचुकी और दुर्योधन का घूमते हुए)

दुर्यो—(कुछ सोचताहुआ) यह भी किसी ने अच्छा कहा है,

'गुप्त रीति से, या होकर प्रत्यक्ष,
स्वयं करे वा कोई और सुदक्ष,
थोड़ा हो या बहुत शत्रु-अपकार,
निश्चय देता है आनन्द अपार।'

इस लिये आज यह सुनकर कि द्रोण, कर्ण, जयद्रथादि के द्वारा अभिमन्यु मारडाला गया मेरा मन फूला नहीं समाता है।

कंचुकी—हे देव, केवल आचार्य के ही शस्त्र के प्रभाव से ऐसा होना कठिन नहीं था, फिर कर्ण, जयद्रथादि की इस में क्या तारीफ़ है ?

दुर्यो—विनयंधर! तूने क्या कहा? बालक अभिमन्यु का धनुष टूट जाने पर बहुत सों ने उसे मिलकर मारदिया कदाचित् यह तुझे कुछ खटका, इसी लिये तू कहता

है कि कर्ण जयद्रथादिकी क्या बड़ाई हुई-देख,
कायर दुष्ट शिखंडी को रण में आगे कर,
वृद्ध पितामह के छल बल से लिये प्राण हर,
वह कुकर्म उन पांडुसुतों को जो यश देगा,
वही सुयश जग में सहर्ष दुर्योधन लेगा।

कंचुकी—देव, आप यह कल्पना न कीजिये, हमलोगों ने आप के पौरुष की बराबरी करने वाला आज तक संसार में नहीं देखा है, इसी लिये निवेदन किया।

दुर्यो—(हर्षित होकर) यही बात है,
जो अनुजगण, सुत, सुहृद, बांधव, भृत्य आदि अपार,
उन सहित डालेंगे मुझे भी पांडु—सुत अब मार ।
क्यों न ?

कंचुकी—(कानों पर उंगली रखकर) शांतिः शांतिः शांतिः

दुर्यो—विनयंधर! मैं ने अभी हाल क्या कहा था ?

कंचुकी—जो अनुजगण, सुत, सुहृद, बांधव, भृत्य आदि अपार
उन सहित डालेंगे युधिष्ठिर को अभी हम मार।

दुर्यो—आज प्रातः काल बिनाही मुझसे मिले देवी भानुमती उठकर चली गयीं इस लिये मेरा चित्त कुछ उद्वेजित सा हो रहा है, ज़रा मुझे वहां ले तो चल जहां महारानी बैठी हैं।

कंचुकी—महाराज, जो आज्ञा, आइये इस रमणीक उद्यान में होकर पधारिये।

(दोनों गये)

सीन ४

(स्थान-एक उद्यान)

(भानुमती, सुवदना और एक और सखी बैठी है)

सुवदना—रानी भानुमती, आप अखंड-ऐश्वर्य महाराज दुर्योधन की वीरपत्नी होकर भी केवल एक स्वप्न के कारण अधीर होकर इतना संताप क्यों करती हो?

सखी—महारानी जी, सुवदना सच कहती है, भला स्वप्न में क्या २ नहीं दीखता?

रानी—सखी यह सब सच है, परन्तु यह स्वप्न मुझे अमंगल-कारक दीखता है

सुवदना—प्रिय सखी, यदि यही बात है तो कहिये कि वह स्वप्न क्या है जिस से हम उसके परिहार का उपाय करें।

सखी—सुवदना ठीक कहती है, वहुत से स्वप्न जो देखने में अशुभ होते हैं वे देवताओं की सेवा से अच्छा परिणाम देने लगते हैं यह सुना है।

रानी—यदि यही बात है तो मैं कहती हूं तुम ध्यान से सुनो।

सुवदना—हम सावधान हैं तुम कृपाकर कहो तो सही।

रानी—(सोचकर) सखी, भय के मारे मैं कुछ भूल भी गयी हूं, ज़रा ठहरो, सोचलूं, पूरा याद आते ही कहूंगी (सोचती है)।

सखी—प्रिय सखी, क्या याद आया?

रानी--हां री, याद आया, मुझे ऐसा दीखा कि मानों मैं प्रमदवन में बैठी हूं और मेरे सामने वहीं एक बड़े तेजवान नेउले ने आकर सौ सर्प मारडाले।

सखियां--(घबराहट छिपाकर) ईश्वर कुशल करे २ (प्रकट) हां तब क्या हुआ?

भानुमती--अरे ठहरो, दुःख के मारे मैं फिर भूल गयी।

(प्रवेश दुर्योधन और कंचुकी का)

कंचुकी--(दूर से दिखाकर) देव! यह देखिये महारानी, सुवदना और तरलिका के साथ बैठी हैं।

दुर्योधन--(देखकर) आर्य विनयंधर, तू जा और संग्राम के लिये रथ तयार कर, मैं भी इन से मिलकर अभी आता हूं?

कंचुकी--जो आपकी आज्ञा। (गया)

राजा--(आपही आप) अरे ये सब क्या गुपचुप बातें कर रही हैं ज़रा यहीं से मैं भी तो सुनूं। (सुनने लगा)

सखी--महारानी अब दुःख दूर करो।

सुवदना--हां फिर क्या हुआ?

राजा--(आपही आप, सोचता हुआ) इसके दुःख का कारण क्या है? यह बिना मुझसे बोलें चालें आज चुपके से क्यों उठ आई? मैं ने तो किसी तरहका दुःख इसे दिया नहीं है।

भानु--हां, फिर मैं उस नकुल के अत्यन्त तेजवन्त दिव्य रूप से उत्सुक हुई।

राजा—(आश्चर्य से, आपही आप) क्या कहा? नकुल के अत्यन्त तेजवन्त दिव्य रूप से उत्सुक हुई! तो क्या इस माद्री के लड़के, अजुर्न. के छोटे भाई से प्रेम करने वाली से मैं यों ही ठगा जारहा हूं? (सोचकर) ठीक है, इसी लिये यह चुपके से उठ गयी, (क्रोध से) अह, मैं इतने धोखे में पड़ा हूं? इस की ऊपरी बातों से मैं यह नहीं जान सका कि मेरा एक कुलटा से पाला पड़ा हुआ है। मेरे सामने तो मेरी बड़ाई करती है और पीछे और लोगों से मिलती जुलती है, कैसी सखियों से बातें कर रही है, और मुझे छोड़कर योंही भागआई!

दोनों सखियां—फिर क्या हुआ?

भानु—तब मैं झट इस लता मंडप में चली आई और वह नकुल भी मेरे पीछे २ यहीं आया।

राजा—(आपही आप) हाय, जैसी यह कुलटा है वैसा ही इसका स्वभाव भी है। अरी निर्लज्ज, इन सखियों से अपने पाप कर्म का हाल कहते, तुझे लज्जा नहीं आती?

सखियां—हां फिर?

रानी—तब उस नकुल ने हाथ बढ़ाकर मेरी छाती के वस्त्र को खींच लिया।

राज़ा—(क्रोध से, आपही आप) बस अब इस से अधिक नहीं सुनना चाहता। अब, पहिले तो उस माद्री के लड़के

व्यभिचारी नकुल की जान निकालनी चाहिये। (सोचकर) अच्छा पहिले इस की ही मरम्मत कर चलूं।

सखियां—अच्छा हां, फिर क्या हुआ?

रानी—तब महाराज के जगाने के लिये वेश्याओं द्वारा किये गये प्रातःकालीन गान से मैं जाग उठी।

राजा—(आश्चर्य से) हैं! क्या कहती है, कि मैं जाग उठी! तो क्या अबतक सुपने की बातें कह रही थी? अच्छा सब मालूम हुआ जाता है।

(दोनों सखियों का एक दूसरी की ओर विषाद से देखना)

सुवदना—इस स्वप्न का अशुभ फल ब्राह्मणों के आशीर्वाद से तथा यज्ञ आदि से दूर किया जासकता है।

दुर्यो— (आपही आप) बस अब संदेह की जगह नहीं है, इस ने केवल अपने स्वप्न का ही वर्णन किया था, मैं ने बिना ही विचारे कुछ का कुछ समझ लिया, चलो यह भी अच्छा हुआ कि मामला बढ़ने नहीं पाया।

भानु.—सखियो बतलाओ कि इसका शुभफल क्या होसकता है?

सखियां—हमको तो जो ठीक लगे वही कहना चाहिये क्यौं कि भला चाहने वालों का यही धर्म है-यह स्वप्न तो अमंगल-सूचक ही है पर देवता की पूजा करने से इसका अशुभ फल दूर हो सकता है। नेउले का या और किसी डाढ़ वाले जीवका दर्शन और सौ सर्पों का बध इन बातों का दीखना ज्योतिषी लोग बुरा बताते हैं।

दुर्यो—(आपही आप) सुवंदना ने सच कहा, नकुल द्वारा सौ सर्पों का बध और छाती के कपड़े का खींचा जाना भविष्य में हमें अशुभ फल देगा ऐसा मालूम होता है। (सोचकर) मैं और मेरे भाई भी तो गिनती में सौ ही हैं, बस यही सोचकर मेरा माथा ठनकता है। क्या दुर्योधन डरता है? उंह, इन झूठे अशकुनों से तो कायर लोग डरते हैं, भला मैं डरूं? हुं:—अच्छा, अब चलकर प्यारी भानुमती का भय दूर करना चाहिये।

भानु—(उंगली से दिखाकर) सखी देख अंधकार का नाश करके भगवान सूर्य नारायण कैसे शोभायमान लगते हैं?

सखी—अहा, इन की किरणों से हलकी पीली धूप इस बगीचे में भी बिछ चली है-लाल चन्दन, फूल, जल इत्यादि से इन की पूजा करनी चाहिये-यह समय पूजा ही का है।

भानु—सखी तरलिका, तनिक मेरा जल पात्र तो लेआ-आ इन की पूजा करूं।

सखी—जो आज्ञा (जाना और पात्र लेकर लौट आना) यह है पात्र, पूजा करिये—(रानी का पूजा के लिये पूर्व की ओर मुख करके बैठना)

दुर्यो—यही अच्छा समय है। (आना और सखी से फूल लेकर रानी को पीछे से देना, कुछ फूलों का गिरपड़ना)

(दोनों सखियों का एक दूसरी की ओर विस्मय से देखना और हट कर खड़ा होना)

भानु—(क्रोध से) अरे, कैसी लापरवाह है! (फिर कर और राजा को देखकर लज्जित होकर उठ खड़ी होना और दुर्योधन का हंस देना)

भानु—ओहो आप कब करके आगये? आज्ञा हो तो कुछ नियम करलूं।

दुर्यो—मैं तुमारा स्वप्न वृत्तान्त जान चुका हूं, अब इस सुन्दर सुकुमार शरीर को खेद न पहुंचाओ।

भानु—मुझे उस स्वप्न के फल का बड़ा डर है इस लिये मुझे यह नियम करने की आज्ञा दीजिये।

दुर्यो—बस छोड़ो इस डरको, देखो

है अगणित मम सेना महान,
कर रही धरा को कम्पमान,
हैं द्रोण, कर्ण से समरधीर
उद्यत देने को प्राण, वीर,
शत-भ्रात-दीर्घ-भुज-वन कराल,
मैं केशरीन्द्र उसका नृपाल,
तुम मम प्रिय गृहिणी हो ललाम,
इस भयका फिर क्या भला काम?

भानु—आर्य पुत्र, भय तो मुझे आपके पास रहते किसी प्रकारका भी नहीं है परन्तु मैं आपका मनोरथ सिद्ध हो यही चाहती हूं।

दुर्यो—हे सुन्दरी, यही मेरे मनोरथ हैं कि मैं तुमारे साथ आनन्द से बिहार करूं—देखो....(नेपथ्य में बड़े भारी चटाचट् शब्द का होना, सब का सुनना)

भानु—(घबड़ाकर और लिपटकर) आर्यपुत्र! बचाइये २

दुर्यो—(सब ओर देखकर) प्यारी, बस मत डरो, डरने का क्या काम है? देखो

उड़ा दिये हैं बिटपाङ्ग बेगसे,
मचा दिया है कुहराम व्योम में,
झंझोड़ डाले जड़मूल से तरु,
उखाड़ फैंके कुछतो, लखो यहां;
करीं दिशाएं सब व्याप्त रेणु से,
छिपा दिया है नभ में दिवाकर,
प्रचंड उद्दंड इसी समीर ने,
न हेतु कोई भय का यहां प्रिये।

सखी—महाराज, इस दारु पर्वत महल में चलिये—डांवाडोल करने वाला यह भयंकर तूफ़ान उठता ही आता है, देखिये न? इस की धूल से आंखें भरी जाती हैं (उंगली से दिखाकर) वृक्षों के टूटने के चड़चड़ शब्द से डरकर घोड़े घुड़साल से भगे जाते हैं, और अंधेरा सा होजाने के कारण ठीक २ मार्ग भी नहीं सूझ सकता।

दुर्यो—यह तूफ़ान तो मेरा मित्र ही निकला कि जिसके कारण से बिना ही मेरे प्रयत्न के, रानी ने अपना नियम छोड़कर मेरा मनोरथ पूर्ण किया,

भ्रकुटि चढ़ाई कोष से न दृग-नीर बहाया,
निज चन्द्रानन फेरके न तनु दूर हटाया,
'मुझे न छूना,, चलो हटो' यों कहकर प्यारी
कर कटाक्ष-क्षत हो न गई यह मुझ से न्यारी,
किंतु स्वयं ही निकट आ, प्रिय आलिंगन मेरा किया;
निज बाहु-पाश में फांसकर, मुझको अपना करलिया।

इस लिये तूफ़ान तो मेरा मित्र ही हुआ-अच्छा चलो दारु पर्वत पर बिहार करें—चलो प्यारी (चलते हुए)

धीरे २ चलो, न भय कुछ मन में लाओ
आगे देखो, चलो, न तनु इस भांति कंपाओ
सिरिस-कुसुम-सुकुमार बाहु से आलम्बनकर
आश्रय ले मम, प्रिये! मार्ग में चलो धैर्य धर।

(सब गये)

(प्रवेश कंचुकी का)

कंचुकी—कहिये, क्या देखा, बस समझ लीजिये कि अब जीता पांडवों को! देखो न, इधर रथ तयार करा लिया है उधर भोग बिहार की धुन सवार है—इधर महाराज, बस अब क्या कहूं...बुड्ढों की कोई बात भी नहीं पूछता...यदि महाराज मेरा कहा माने तो बस....हूं।

(गया)

सीन ९

(स्थान-दारु पर्वत वाला महल)

(प्रवेश दुर्योधन, भानुमती और सखियों का)

दुर्योधन—प्यारी, अब यहां धूल नहीं आसकती क्योंकि यह स्थान चारों ओर से घिरा हुआ है, इस लिये अब धूल पोंछ कर आंखें खोल दो।

भानु—हां अच्छी बात है आंधी यहां तक नहीं आती। (रुमाल से आंखें पोंछती है)

सखी—महाराज, ऊपर चढ़ने से महारानी जी के पैर थक गये हैं फिर क्यों नहीं आप इस आसन को सुशोभित करते ?

राजा— (रानी को देखकर) प्रिये, आंधी ने तुमारे दुर्बल अंग को बहुत कष्ट दिया-अच्छा अब बैठना चाहिये ।

(सब बैठते हैं)

राजा—प्यारी, तुम बिना बिछोने की कठिन शिलापर क्यों बैठ गयीं–तुमोर लिये तो यह उपस्थित है–मेरी जंघा

(घबराये हुए कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—महाराज ! तोड़दी !! तोड़दी !!!

(सब का डर से देखना)

राजा—किसने?

कंचु—भीम ने !

राजा—अरे क्या बकता है ?

भानु—आर्य, यह क्या कहता है ?

कंचु —(डर से) श्री महाराज, सब कहे देता हूं। देव !

रथ की पताका तोड़दी इस अनिल भीषणने निरी,
और, हाय बिचारी
वो घंटियों के शब्द से रोती हुई भू पर गिरी।

राजा—अरे इस बलवान वायु के बेग से, जिससे कि सारा भुवन कांप उठा, यदि मेरे रथ की ध्वजा टूट गयी तो क्यों इस तरह पागल सा चिल्लाता फिरता है कि तोड़दी २ ?

कंचु—देव, इस की कुछ शांति की जाय इसी लिये आप से कहने आया था, और कुछ कारण नहीं था, क्षमा कीजियेगा, स्वामिभक्ति की प्रेरणा से ही ऐसा किया।

भानु—आर्यपुत्र, इस का परिहार ब्राह्मणों के वेद पाठ और हवन से शीघ्र ही कराइये।

राजा—(अवज्ञा से) अच्छा जा, पुरोहित सुमित्र से सब बात चीत कर।

कंचु—जो प्रभू की आज्ञा। (गया)

(प्रवेश घबराई हुई प्रतीहारी का)

प्रती—श्री महाराज की जय हो, जय हो, श्री महाराज ! सिन्धुराज जयद्रथ की माता और आप की बहिन दुःशला द्वार पर खड़ी हैं।

दुर्यो—(आपही आप) क्या ? जयद्रथ की माता और बहिन दुःशला ! क्यों आई ? अभिमन्यु के बध से क्रोधित हुए पांडुसुतों ने कहीं कुछ अनिष्ट तो नहीं कर डाला ? (प्रकट) अच्छा जां, शीघ्रं भीतर लिवाला ।

प्रती—जो आज्ञा श्री महाराज की । (गयी)

(प्रवेश—घबरायी हुई जयद्रथ की माता और दुःशला का, दोनों का दुर्योधन के पैरों पर गिरना)

माता—(आंखों में आंसू भरे हुए) हे कुरुनाथ ! बचाइये २

(दुःशला का रूमाल से मुख ढक कर रोना)

दुर्यो—(भय से उठ खड़ा होकर) माता, धैर्य धरिये २, क्या हुआ ? समर बांकुरे महारथी जयद्रथ, की कुशल तो है ?

माता—पुत्र, कुशल कहां ?

राजा—सो कैसे ?

माता—(शंकित होकर) पुत्र के बध से जिसका क्रोध उद्दीप्त हो गया है, ऐसे गांडीव धारी अर्जुन ने 'आज सूर्यास्त से पहिले ही जयद्रथ को मार डालूगां' यह प्रतिज्ञा की है-

दुर्यो—(मुस्किराकर)क्या यही आपकी और दुःशला की घबराहट का कारण है ? पुत्र शोक से पागल हुए अर्जुन की इस तुच्छ बात से ही आप की यह अवस्था हो गई ? बस हुआ ! छोड़ो यह सारा विषाद—बहन दुःशला ! अब वृथा आंसू न बहा, भला धनंजय का क्या बूता है जो दुर्योधन की बाहु-परिघ से रक्षित महारथी जयद्रथ का बाल भी बांका कर सके ?

माता—बेटा, अपने बंधु का बध हो जाने के कारण उद्दीप्त हुए क्रोध से विकल हो वीर लोग अपने शरीर की तनिक भी परवाह न कर पराक्रम और साहस करते हैं-

दुर्यो—(हंसकर) यही बात है। पांडवों का क्रोध तो सब लोगों पर विदित है। देखो,

राज सभा के बीच में, मेरी आज्ञा मान,
दुःशासन ने जब किया, कृष्णा का अपमान,
खींचे उसके कच वसन, किया बहुत उपहास,
पांडु पुत्र देखा किये, बैठे २ पास,
था न धनंजय क्या वहां, गांडिव धारी वीर?
वा न उपस्थित था वहां, भीमसेन रणधीर?

अथवा,

जिन युवकों को है तनिक, क्षत्रिय-कुल-अभिमान,
क्या वह उन सब के लिये, था न अमर्ष-स्थान?

माता—अर्जुन ने यह भी कहा हैं कि यदि अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका तो आत्मघात कर लूंगा।

राजा—यदि यह सच है तो बड़े हर्ष की बात है, क्योंकि युधिष्ठिर का भाइयों समेत जड़ मूल से नाश होने में अब देर नहीं है—हे माता, अर्जुन या और किसी भी पांडव की क्या सामर्थ्य है जो हम सौ भाइयों और कृप, कर्ण, द्रोण और अश्वत्थामा आदि अतुल पराक्रमी महा रथियों के सन्मुख रहते तुमारे युद्ध-दुर्मद पुत्र का नाम भी ले सके-हे अपने सुत के पराक्रम को न जानने वाली, राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव, इन

तीनों के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है क्यों कि ये तो लड़ाई के मतलब के ही नहीं–अब रह गये भीम और अर्जुन, सो जिस समय महापराक्रमी सिंधुराज अपने भयंकर बाणों से धरा को कंपाता हुआ रुंड से मुंड अलग उड़ावेगा उस समय इन दोनों में से किसी का भी बूता नहीं है जो उसके सामने टिक सके।

भानु—आर्यपुत्र, यद्यपि आपका कथन सत्य है तथापि अर्जुन ने इतनी कड़ी प्रतिज्ञा की है यह भी अवश्य विचारणीय है, क्योंकि उसने भी कुछ सोचकर ही प्रतिज्ञा की होगी–अपने प्राण किसे बुरे लगते हैं ?

माता—भानुमती, तूने समयानुकूल बहुत ठीक बात कही।

राजा—आः मुझ दुर्योधन को भी पांडवों की ओर से शंका करनी चाहिये ? देख,

रिपु-मृग-गण के हित साभिमान,
हैं यम कराल केहरि समान,
हैं जो प्रचंड प्रख्यात वीर,
हैं कवच–रहित जिनके शरीर,
जिनके लगते मिलकर विचित्र,
सित-कमल-विपिन सम आतपत्र,
उन सहोदरों की उग्रदंड,
है सेना रण–दुर्मद प्रचंड,
जिसने हो विक्रम-गर्व-भरी,
पद धूर-धूसरित धरा करी,
फिरती वह चारों ओर मस्त,
करती विनाश रिपुगण समस्त !

हे भानुमती, पांडवों के प्रभाव को जानने वाली, देख,

"रक्त पियूंगा दुःशासन का,
रण में उसका हृदय फोड़कर
बदला लूंगा कृष्णा का मैं,
दुर्योधन की जांघ तोड़कर"
ऐसे व्यर्थ प्रतिज्ञाकारी,
पांडुपुत्र, अब, हे अनभिज्ञा !
देखें कैसे सिंधुराज-बधकी,
करते हैं पूर्ण प्रतिज्ञा ?

जैसे वे दोनों व्यर्थ हुई वैसे ही इसे भी समझनी चाहिये। अरे, कोई है यहां? विजय देने वाला मेरा रथ तो ले आओ कि मैं जयद्रथ की रक्षा कर उस बकवादी पांडव की प्रतिज्ञा झूठी करके उसको शस्त्र की जगह लज्जा ही से मरने का अनुभव कराऊं।

(प्रवेश कंचुकी का)

कंचुकी--(विनीत भाव से) देव,

लगीं अनेकों शुभ हेम-घंटियां,
सुनादिनी हैं जिसमें सुचंचला
ध्वजा, पताका, चमरादि से सजा,
रिपुक्षयी वो रथ है यहीं खड़ा।

राजा—देवि, तुम भीतर जाओ तब तक मैं भी उस बकवादी पांडव की प्रतिज्ञा झूठी कर उसे शस्त्र की जगह लज्जा ही से मरनेका अनुभव कराऊं (यों कहता हुआ बाहर गया)

(सब का जाना)

(जवनिका पतन)

एक्ट ३

सीन १

स्थान-कुरुक्षेत्र (रणभूमि) के पास

(प्रवेश बुद्धिप्रकाश नामक कौरवों के गुप्तचर का)

बुद्धि—हुं!, देखो मैंने भी संसार में कैसा नाम पाया है 'बुद्धि-प्रकाश'—पर आज कल मैं ने अपने स्वामी के काम के लिये अपने को पागल प्रसिद्ध कर रक्खा है। ईश्वर सब को बराबर बुद्धि नहीं देता, देखो न! मेरे बराबर संसार में कोई बुद्धिमान ही नहीं, यदि मैं कुछ बुरा काम भी करूं तो उसमें भी बुद्धिमानी से अपने को मूर्ख साबित नहीं होने देता हूं, और यदि लोग मुझे मूर्ख समझने लगते हैं तो मैं उन्हें ही मूर्ख समझ कर अपनी बुद्धिमानी का परिचय दिया करता हूं। दूसरों के निर्दोष कामों को सदोष और अपने सदोष कामों को भी निर्दोष सिद्ध करना तो मेरी बुद्धि के बायें हाथ का खेल है। पर, (एक ओर देखकर) यह सामने से कौन आ रहा है, यह भी कोई अपना ही सा दीखता है, देखिये अभी सब भेद लिये लेता हूं।

(प्रवेश औज़ार, बकस आदि लिये एक वैद्य का)

महाशय! बस ठहरिये वहीं (वैद्य ठहर गया), देखिये मैं आपसे एक बात कहता हूं, वह यह कि शायद आपको मालूम नहीं होगा कि मैं दिन में बहुत से बुद्धिमानी के काम किया करता हूं, इसके समर्थन

में देखिये अभी हाल में बिना ही जान पहचान के आपकी बहुतसी बातें बतलायें देता हूं, ध्यान से सुनिये-देखिये, आपके हाथ में बकस है इससे प्रत्यक्ष है कि आप मलाई की बरफ बेचते हैं, और देखिये; हंसिये मत-मैं कोई ऐसा वैसा आदमी नहीं हूं, मेरा नाम बुद्धिप्रकाश है, हां, और आपके हाथ में कुछ औज़ार हैं इससे विदित होता है कि आप मौक़ा आने पर बढ़ई का काम करने से भी पीछे नहीं हटते- और, और देखिये आप कुछ घबराये हुए से हैं इससे साबित होता है कि आप मिर्च के देश से भाग कर आये हैं; कहिये कैसा है मेरी बुद्धि का चमत्कार ?

वैद्य—महाशय, आप दीखते तो कुछ बुद्धिमान से हैं किंतु—

बुद्धि—'किंतु परन्तु' के संबंध-तंतु से अपनी बातों को न लपेटिये—

वैद्य—आपने जितनी बातें मेरे विषय में कहीं वे सब ठीक नहीं उतरीं–मैं वैद्य हूं।

बुद्धि—क्या आप वैद्य हैं ? तो क्या आप खटमलों और मच्छड़ों का इलाज भी करते हैं ? वैद्यराज, मैं सच कहता हूं मैं आपका पूरा बकस धन्यवादों से भर दूंगा आप मुझे किसी तरह इस आफत से बचाइये और जंगल में मोर नचाइये और सब को दिखाइये।

वैद्य—(हंसकर) अजी मैं तो आप सरीखे बुद्धिमानों का इलाज करता हुआ कुरुक्षेत्र से आरहा हूं।

बुद्धि—(उंगली से दिखाकर) वह तो रहा कुरुक्षेत्र—वहां क्या मुर्गे लड़रहे हैं कि जिनका आप इलाज करने गये थे, यदि यही बात है तो वैद्य जी मैं आपके हाथ जोड़ता हूं (वैद्य के दोनों हाथ पकड़ कर जोड़े) और आपको साष्टांग दंडवत करता हूं (एक डंड पेला) कृपा करके मुझे भी तमाशा दिखा लाइये।

वैद्य—(हौले से, अपने आप) अब इस में तनिक भी सन्देह न रहा कि यह कोई पागल है। (प्रकट) कुरुक्षेत्र में कौरवों और पांडवों का संग्राम हो रहा है, वहीं से मैं आपके लिये भी कुछ समाचार लाया हूं।

बुद्धि—(हाथ जोड़कर) महाराज, आपकी कोकिला के समान प्यारी बोली ने मुझे न जाने कहां २ की पुरानी बातों की याद दिलादी, मैं अवश्य आपका कद्र करता परन्तु क्या करूं मुझे खांसी हो जाती है इस लिये आम का अचार खाना मैंने छोड़ दिया है, इसलिये जो अचार आप मेरे लिये लाये हैं उसे आपही निबटा डालिये, पर यह तो बतलाइये कि लड़ाई में किसका तीतर अच्छा लड़ा।

वैद्य—अजी तीतरों की बात जाने दीजिये-(उंगली से दिखाकर) वह देखिये सामने उधर अभी हाल धृष्टद्युम्न द्रोण के केश पकड़ कर खींच रहा था और तलवार से उन्हें मार रहा था, यह दृश्य मुझ से तो देखा नहीं गया और मैं तो वहां से भागा।

बुद्धि—(अकड़ कर) यदि मेरी बराबर बुद्धि धृष्टद्युम्न या द्रोण में होती तो ऐसी नौबत ही क्यों आती ? पर क्यों जी श्रीमान् आयुर्वेद-सूर्य-ग्रहण, ज्ञान-मार्तंड श्री युक्त वैद्य प्राण-हर शर्माजी, कहिये आपने किस २ का इलाज किया।

वैद्य—अजी मेरे इलाज की आप क्या पूछते हैं, बहुत सों को कष्ट से छुड़ा चुका हूं, संसार सागर से पार लगा चुका हूं-जयद्रथ, भगदत्त, सोमदत्त, वाल्हीक इत्यादि जिन की कि सब वैद्य आशा छोड़ चुके थे, उनकी बीमारी को मैंने इस तरह आराम कर दिया है कि अब उन्हें कभी किसी वैद्य की स्वप्न में भी आवश्यकता न पड़ेगी।

बुद्धि—(चौंककर) क्या जयद्रथ मारे गये ?

वैद्य—अपना प्रण पूरा करने को अर्जुन ने जैसा उस दिन संग्राम किया और रण-कौशल दिखाया वैसा पहिले कभी नहीं देखा गया था, और घटोत्कच मारा गया है इस लिये भीमसेन भी बड़े क्रोधित होकर युद्ध करते हैं और जिधर निकल जाते हैं उधर ही मुरदों के ढेर लगाते जाते हैं-बस अधिक कहने से क्या लाभ ? आप तो महा बुद्धिमान हैं, बहुत दूर की सोचते हैं, अपने आप ही सोच लीजिये-

बुद्धि—सच है खून की नदियां बह उठी होंगी (गिड़ गिड़ा कर और वैद्य के पैर छूकर) मुझे तो डर लगता है।

वैद्य—बस करली आप की बुद्धि की परीक्षा, और—(चौंककर) अरे! यह देखिये सामने से अश्वत्थामा तलवार खींचे आरहा है। भागिये नहीं तो आपको पागलखाने में बंद करवा देगा। (दोनो भागगये)

(प्रवेश अश्वत्थामाका नंगी तलवार लिये, नेपथ्यमें बड़े भारी शब्द का होना)

अश्व:—(शब्द को सुनकर)

(उंगली उठा कर)

प्रलयकाल-मारुत-क्षुभित–घन-गर्जना प्रचंड,
द्विगुणित सी करती जिसे प्रतिध्वनी उद्दंड!
समर-उदधि से आज यह, अश्रुतपूर्व निनाद
फैलाता ब्रह्मांड में, कैसा घोर विषाद?

अ:, कान के परदे फटे जाते हैं (सोचकर) निश्चय आज अर्जुन, सात्यकि या भीमसेन ने युवावस्था के घमंड में मर्यादा का उलंघन करके पिता जी को कुपित किया है और वे भी शिष्यों के प्रति प्रीति-भाव को भूल कर अपने अनुरूप पराक्रम कर रहे हैं; और

दुर्योधन का पक्षपात कर
यह समुचित है करना उनको:—
(सोचकर) समर भूमि को शत्र-शवों से
स्वयं निरंतर भरना उनको;
माया मोह प्रेम सब तज,
जो आवें निकट, काटना उनको,
छिन्न भिन्न अवयव समूह से
यह रण-सिंधु पाटना उनको,

अथवा रण–क्रतु–अनल मध्य
बहु मस्तक काट चढ़ाना उनको,
यों रणचंडी को प्रसन्न कर
कौरव पक्ष बढ़ाना उनको।

मालूम पड़ता है कि पिताजी आज यही कर भी रहे हैं तभी यह ऐसा भयंकर शब्द हो रहा है; (पीछे देखकर) बस अब कहां तक रथकी प्रतीक्षा करूं, मेरे पास शस्त्र तो हैं ही, (तलवार को देखता हुआ) इस तलवार की प्रभा भी कैसी सुन्दर है, ऐसी है जैसे सजल–जलधर; और यह उजली सोने की मूठ भी कैसी उत्तम है? बस इसी को लेकर रण भूमि में जाऊं; मेरी बड़ी उत्कट इच्छा है कि समर महोत्सव में सम्मिलित होकर पिता जी का पराक्रम देखूं क्यों कि आजकल तो सेना का भार ही उन परहै। (एक ओर देखकर) अरे! क्षत्रियों का सब धर्म छोड़कर और उसके साथ ही सत्पुरुषोचित लज्जा को भी तिलांजलि देकर, और स्वामि-कृत सत्कारों को भूलकर, और हाथी घोड़ों को भी छोड़ छाड़कर ये नीचलोग भागे जारहे हैं उसी का यह शब्द है (पैरों का धप् २ शब्द होना) कुछ तो इधर भी आये (कर्ण आदि का एक ओर से दूसरी ओर भागना) हा! बड़ा कष्ट है, महारथी कर्ण आदि भी लड़ाई से क्यों भाग खड़े हुए? (शंका से) पिता जी से रक्षित होने पर भी सेना की यह अवस्था! हे हे कौरव सेना समुद्र के

रक्षक पहाड़ों के समान राजालोगो! बस अब लड़ाई से भागने का साहस न करो, क्योंकि

जो समर तज भागने से मृत्यु फिर आवे नहीं,
ठीक है तब तो वहां से भागकर छिपना कहीं,
किंतु सब को खायगी जब मृत्यु एक न एक दिन,
तो भला यों भागकर क्यों कर रहे निज यश मलिन?

और,

सर्व-धनुर्धर-श्रेष्ठ पिता मेरे बलधारी,
रोक रहे हैं रण-प्रचंड रिपु सेना सारी,
उन के होते हुए चमूपति, समर धुरंधर,
धिक् कृप, धिक् २ कर्ण, भागते हो तुम सत्वर!
लौटो २ वीर, न भय कुछ मन में लाओ,
ऐसी क्या है बात? मुझे भी तो बतलाओ,
अस्त्रानिल से रिपु-सेना-समुद्र के शोषक,
कहो कहां हैं पूज्य पिता कौरव-बल-पोषक?

(नेपथ्य से) आप के पिता अब कहां?

अश्व—(सुनकर) क्या कहा? 'आप के पिता अब कहां' आः, अरे क्षुद्र कायरो ऐसी बकवाद करते में तुमारी जिव्हा के हज़ार टुकड़े क्यों नहीं होजाते?

नभ मंडल में घोर प्रलय-घन अभी न छाये,
द्वादश रवि भी नहीं विश्व को दहने आये,
फिर यह कहना, मूर्ख! 'आप के पिता कहां अब'
कैसे समझें सत्य? प्रलय है हुआ यहां कब?

बिना प्रलेय हुएं ही मेरे पिता संसार छोड़दें यह बातें मिथ्या है, अविश्वसनीय है, असंभव है।

(प्रवेश द्रोण के घबराये हुएं घायल सारथी का)

सारथी–कुमार! बचाइये २ (पैरों पर गिरा)

अश्व—(देखकर) अरे! पूज्य पिताजी का सारथी अश्वसेन! आर्य, त्रिलोकी की रक्षा करने में जो समर्थ हैं उन के सारथी होकर भी तुम मुझ सरीखे बालक से कैसी रक्षा चाहते हो?

सूत—(उठकर, करुणा से) अब आप के पिता कहां?

अश्व—(घबरा कर) क्या कहा?

सूत—(माथे पर हाथ रखकर) और क्या, पिताजी आप के अब इस संसार में नहीं रहे।

अश्व—हाय पिताजी ...हा .. (मूर्छित होकर गिरा)

सूत—कुमार धैर्य धरो, धैर्य धरो।

अश्व—(होश में आकर और बैठकर, सजल नयन) हा तात... हा...सुत-वत्सल...हा त्रिलोकी के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर... हा परशुराम के.... सब अस्त्र-सर्वस्व के...ग्रहण करने वाले....

सूत—कुमार, अब शोक न करिये; आपके पिताजी वीरगति को प्राप्त होगये हैं, अब आपको भी उचित है कि उनके समान अपने वीर्य और पराक्रम के बल से शोक सागर से पार हों।

अश्व—(आंसू पोंछता हुआ) आर्य...कहो तो... किस प्रकार से मेरे बल सागर पिता....

क्या भीमने गुरुदक्षिणा में...
दी गदा उन को....अहो

सूत—नहीं २।

अश्व—फिर क्या....धनंजयने दयामय को...
उन्हें...मारा... कहो।

सूत—यह कैसे संभव था?

अश्व—तो कृष्ण ने ही...चक्र से क्या ...
प्राण उन का हर लिया?

सूत—यह भी नहीं हुआ।

अश्व—तो और किसका....यह असंभव....
कर्म....हो सकता किया?

सूत—कुमार,

जब वे उत्तम अस्त्र समर में धारण करते,
क्रोधित भव की भांति शत्रु दल-मारण करते,
तब क्या ये सब उनकी तुलना कर सकते थे?
क्या उनके सन्मुख क्षण भर भी लड़सकते थे?
त्यागे आयुध किंतु शोक-संतप्त हृदय हो,
तभी किया यह घोर कर्म रिपुने निर्भय हो।

अश्व—इस शोक का और आयुध त्याग देने का क्या कारण था?

सूत—इस सब के कारण आपही हो।

अश्व—मैं कैसे हूं ?

सूत—(आंसू पोंछता हुआ) सुनिये,

"अश्वत्थामा मरा" प्रथम यह बात उड़ाई,
पीछे से कह दिया कि" वह तो गज था, भाई।"
धर्मराज का केवल पूर्व-वचन ही सुनकर,
सुत-वत्सल तव पूज्य पिता ने ली प्रतीति कर,
आंखों से जल, आयुध करों से...
त्याग जब उनने दिये···
तब क्रूर-कर्मा शत्रुने....हा...
प्राण उनके ले...लिये।

अश्व—हा तात, हा सुतवत्सल, हा दुष्ट धर्मराज की बातों की प्रतीति कर वृथा मेरे लिये जीवन त्यागने वाले, हा शौर्य-राशि, हा शिष्य-प्रिय, हा नीच युधिष्ठिर...(रोताहै)

सूत—कुमार, बस बहुत विलाप हुआ अब धैर्य धरो २।

अश्व—हा सुतवत्सल,

सुन कर बिना प्रमाण, मृत्यु कथा मेरी अहो,
कर से त्यागे बाण, तनु से त्यागे प्राण भी;
हैं न आप संसार में, यह सब कुछ भी जान,
हाय, बने हैं देह में, ये कृतघ्न मम प्राण!

(मूर्छित हुआ)

(नेपथ्य में) कुमार धैर्य धरो २

(उद्वेजित कृप का प्रवेश)

कृप— धिक्कार, हे कुरुनाथ ! है सानुज तुम्हें धिक्कार,
हे धर्मराज, तुम्हें तथा हम सबों को धिक्कार,

जों केश, कृष्णा के सभा में, द्रोण के हा आज—
देखा किये खिंचते खड़े, कुछ भी न आई लाज !

तब किस मुंह से वत्स अश्वत्थामा से बात करूं, पिता की दुर्गति का हाल सुन कर न जाने वह क्या कर डाले, अथवा,

कच-कर्षण से एक के, मचा घोर संग्राम,
दूजे का जाने न क्या, होगा दुष्परिणाम ?

निश्चय अब प्रजा निःशेष ही हो जायगी- देखो अश्वत्थामा विचारा यह पड़ा है (पास जाकर)बेटा, धैर्य धरो, धैर्य धरो।

अश्व—(होश में आकर, सजल-नयन) हा तात, हा सब संसार के गुरु, (आकाश की ओर देखकर) युधिष्ठिर!

बोले कभी न झूठ जन्मभर,
कभी न वैर बढ़ाया;
इन्हीं गुणों से उत्तम नाम
'अजात-शत्रु' का पाया;
मम कुभाग्य से, हा, तुमने
इन बातों को तजडाला,
निज गुरु, द्विजवर से, कहिये तो
कब का वैर निकाला ?

सूत—कुमार, ये तुमारे मामा कृप शारद्वत खड़े हुए हैं।
अश्व—(देखकर, आंसू पोंछता हुआ) मामा ! मामा !

गये थे आप जिनके साथ रणमें हा कहां हैं वे...?
मिटाते थे जो खुजली शूरवीरों की कहां हैं वे....?
हुआ करती थीं जिनसे आपकी हंसियां कहां हैं वे ...?
पिता मेरे, चमूपति कौरवों के हा कहां हैं वे...?

कृप—(दुःख से) बेटा, जो होना था सो हो गया, क्या कहूं।

अश्व—मामा विलाप करना तो मैं ने छोड़ दिया, अब तो मैं अपने सुत-वत्सल पिताजी के ही पास जाता हूं।

कृप—वत्स, यह तुम सरीखों के योग्य नहीं है।

सूत—कुमार इतना साहस न करो।

अश्व—आर्य, आप क्या कहते हैं?

मम वियोग-भय से पिता, चले गये परलोक।
उन से मिलकर क्यों न मैं, हरूं सुत-विरह-शोक?

कृप—वत्स, जब तक यह संसार है तब तक जन्म मरण तो होता ही रहेगा, यही सोच कर तुमको चाहिये कि संसार में ही रहकर अपने पूज्य पिता का उपकार करो; जब श्राद्ध आदिक कर्म्मों से तुम उनकी यहां रहते हुए भी सेवा कर सकते हो तब वृथा जीवन छोड़ने से क्या प्रयोजन?

सूत—आयुष्मन्, शारद्वत कृपाचार्य जी सत्य कहते हैं?

अश्व—आर्य आपने सब सत्य कहा किंतु शोक की असहनीयता के कारण मैं पिता-रहित होकर घड़ी भर भी प्राणधारण नहीं कर सकता हूं, इसलिये अब उसी स्थान को

जाऊंगा जहां अपने विदेह पिता से मिल सकूं (उठ कर, तलवार को देखकर) बस अब शस्त्र-ग्रहण से भी क्या प्रयोजन? (आंसू पोंछता हुआ, हाथ जोड़कर) भगवन् शस्त्र!

मम पिताने आप से ही ख्याति पाई लोक में,
किंतु त्यागा तुम्हें रण में सुत विरह के शोक में।
मम वियोग वश तज तुम्हें, वे पहुंचे सुर-धाम,
मैं भी करता हूं तुम्हें, सादर आज प्रणाम।

(शस्त्र छोड़ना चाहता है)

(नेपथ्य में)

हे हे राजा लोगो, क्षत्रियों! के गुरु, द्विज-श्रेष्ठ पूज्यवर द्रोणाचार्य जी का इस नृशंस धृष्टद्युम्न द्वारा किया गया अपमान तुम कैसे सह रहे हो?

अश्व—(सुन कर, खड्ग छूता हुआ) क्या कहा? क्या गुरु द्रोणाचार्य का अपमान हुआ?

(फिर नेपथ्य में)

नयन-जलार्द्रानन गुरुवर जो
त्रिभुवन में हैं पूज्य महान,
उनकी सितकच-मौलि पकड़ कर,
धृष्टद्युम्न पिशाच समान,
करके क्रूर कर्म को, देखो,
निज शिविरों को लौट रहा,
हा अपमान सुवृद्ध द्रोण का,
हा कैसे तुम से गया सहा?

अश्व—(गुस्से से कांपता हुआ दोनों की ओर देखकर) यह क्या?

क्या आप सब के सामने मेरे पिता मारे गये?
सब चित्र से देखा किये जब द्रोण संहारे गये!
यदि थे पिता आयुध रहित, तो आपतो बहु-शस्त्रथे,
दृग यदि उन्हीं के थे मिचे, तो खुले कई सहस्र थे,

क्या आप से आयुध-धरों के,
सामने यह बात हो!
अन्याय हो! अपमान हो!!
गुरु द्रोण का अपघात हो!!!

कृप—वत्स यही सुना जाता है—

अश्व—क्या पिता जी का शिर दुष्ट धृष्टद्युम्न ने छुआ था?

सूत—(भय से) कुमार, उन तेज पुंज गुरु का ऐसा भी अपमान हुआ था।

अश्व—हा पिता, हा पुत्र-प्रिय, मुझ मंद भागी के पीछे अपने शस्त्र त्याग कर क्षुद्र धृष्टद्युम्न से आपने यों अपमान कराया; अथवा—

शोकान्ध मन हो त्याग दी निज देह ही रण में यदा,
हैं शीश श्वान, शृगाल, धृष्टद्युम्न छू सकते तदा,

(क्रोध से) किंतु—

दिव्यास्त्र-गर्वित मत्त-रिपु-मद-मथन करने के लिये
ये चरण वज्र समान उस के शीश पर मैंने धरे,

(पैरों का देमारना)

अरे पांचाल कुल-कलंक!

पूज्य पिता को शस्त्र ग्रहण से विमुख देखकर,
तूने हो निश्शंक छुआ उनका पवित्र शिर,
हुआ ज़रा भी ध्यान तुझे उस समय न मेरा,
हूं जो काल समान प्राण का ग्राहक तेरा,
मैं सारी पांचाल-पांडु सेना को क्षण में,
कर दूंगा तृण सदृश पूर्णतः विचूर्ण रण में!

कृप— वत्स, अपने पिता के तुल्य बलशाली दिव्यास्त्र-कोविद तुम क्या नहीं कर सकते हो?

अश्व—अरे पांडवो, मत्स्यो, सोमको, मागधो, अरे क्षत्रिय कुलकलंको! अपने पूज्य पिता के शिरच्छेद का बदला लेने के लिये परशुराम ने शत्रु का रक्त पानी की तरह बहाया था, और उसी से उनका तर्पण किया था; क्या मैं भी उसी तरह तुमारे शिर-पिंड और रुधिर से अपने पिताजी का तर्पण न करूंगा? सूत, तू जा और महाहवलक्षण नामक हमारा रथ लड़ाई के सब सामानों और आयुधों से सजाकर लेआ।

सूत—जो आपकी आज्ञा (गया)

कृप—इस अपमान का बदला लेना हमारा परम कर्त्तव्य है, लेकिन हम सबों में सिवाय तुमारे कौन इस काम को कर सकता है?

अश्व—आप सबों में! इस का क्या मतलब है?

कृप— अबतो आपही कुरुसेना के सेनापति हो कर संग्राम में चलें यह इच्छा है।

अश्व—मामा जी, यह बात तो अपने हाथ में नहीं है, दूसरे, इस से कुछ विशेष लाभ भी नहीं होगा।

कृप— वत्स, न तो यह कर्म पराधीन ही है और न व्यर्थ ही है देखो

अब न द्रोण न भीष्म यहां रहे,
पर उन्हीं सम हो तुम ही बचे,
अपर कौन बली कुरु सेन में,
कुरु-चमूपति के पद योग्य है?

यदि आप कटिबद्ध होकर यह काम करें तो तीनों लोक भी आपका सामना नहीं कर सकते, फिर युधिष्ठिर की सेना बेचारी क्या है, मैं तो सोचता हूं कि सब सामान लिये आपको सेनापति के पद पर अभिषिक्त करने के लिये दुर्योधन जी तयार बैठे आपकी राह देख रहे होंगे।

अश्व—यदि यही बात है तो अपमान की अग्नि में जलता हुआ मेरा हृदय बदले के जल में नहानें के लिये जल्दी करता है- तो मैं पिता के वध से विषन्न मन दुर्योधन के पास जाकर सेनापति का पद स्वयं पाने की प्रार्थना रूपी समाश्वासन से उनका दुःख हरूंगा।

कृप—वत्स यही बात है, चलिये उन्ही के पास चलें।

(गये)

सीन २

(स्थान दुर्योधन का शिविर)

(कर्ण और दुर्योधन कुर्सियों पर बैठे हैं।)

दुर्यो—अंगराज !

मारे जिन्हों के जायं हैं सुत बांधवादिक समर में
तो क्रोध से उन्मत्त हो आयुध ग्रहण कर स्वकर में
वे स्वाभिमानी निज पराक्रम से धरा देते हिला
क्यों तज दिये सुत निधनमें आचार्य ने आयुध भला ?

अथवा किसी ने सच कहा है कि प्रकृति को जीतना बड़ा कठिन काम है क्योंकि शोकान्ध मन होकर आचार्य ने कठिन क्षत्री धर्म को तजकर ब्राह्मणों की सी कोमलता ही को हृदय में स्थान दिया।

कर्ण—राजन् कौरवेश्वर, यह बात नहीं है।

दुर्यो—तो फिर और क्या है ?

कर्ण—यह तो द्रोण का पहिले ही से अभिप्राय था कि अश्वत्थामा को पृथवी का राज्य दिलवादूं—इसीलिये उसकी मृत्यु का हाल सुनकर 'अब मुझ वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र रखना वृथा है' यह सोचकर ही उन्हों ने ऐसा किया।

दुर्यो—(शिर हिलाता हुआ) क्या यही बात है ?

कर्ण—इसी लिये तो कारवों और पांडवों के सहायक राजाओं का पारस्परिक नाश और जयद्रथ का बध भी वे चुप चाप देखा किये।

दुर्यो—सच है।

कर्ण—और हे राजन्, राजा द्रुपद ने तो इनका उपर्युक्त अभिप्राय जान कर ही इन्हें अपने राज्य में रहने नहीं दिया था। मेरे सिवाय और भी कितने ही लोग यह बात जानते हैं।

दुर्यो—इस में क्या संदेह है, उन्हों ने तो

दे सिंधु-राज को अभय-दान,
फिर भी उसका नहिं किया त्राण;
और, खड़े २ देखा किये अर्जुन का संग्राम!
सत्य कहा तुमने अहो अंगराज बलधाम।

(प्रवेश कृप और अश्वत्थामा का)

दोनों—हे राजन् आपकी विजय हो।

दुर्यो—(देखकर) ओ हो, कृपाचार्य जी और अश्वत्थामा! (कुरसी से उठकर) पूज्यवर, आपको प्रणाम करता हूं (अश्व. से) हे गुरुपुत्र विराजिये।

कहां सिधारे हाय, आज मुझे तज पूज्यवर!
हे मम परम सहाय, क्यों असहाय मुझे किया?

(अश्व. से)

उनके देख समान, किंतु तुम्हें गुरुपुत्र—वर!
हे बलबुद्धि निधान, धरता है मन धैर्य कुछ।

(सब का बैठना, अश्वत्थामा का रोना)

कर्ण—हे द्रोण पुत्र, बस, अब अपने को शोकानल में अधिक न जलाइये।

दुर्यो—अचार्यपुत्र, मुझे भी आपके बराबर ही दुःख है, क्यों कि

वे आपके थे प्रिय पिता, मम पिता के प्रिय मित्र थे
गुरु शस्त्र विद्या में उभय के वे विशुद्ध-चरित्र थे,
उनके शरीर-त्याग से मुझ को हुआ संताप जो,
वह, क्या कहूं मैं अधिक, बस निज दुःखसे ही नापलो।

कृप— वत्स, कुरुराजने सच कहा।

अश्व—राजन्, आपकी बातों से मेरा जी कुछ हलका हुआ है, किंतु

पूज्य पिता ने मेरे जीते जी
पाया कच-कर्षण-क्लेश,
निज पुत्रों से रक्खेंगे जन
कहिये अब क्या आश विशेष ?

कर्ण—आचार्य-पुत्र, इसके लिये अब क्या किया जा सकता है ? इसमें किसका वश है सब के रक्षक होकर भी उन्होंने अपने आप शस्त्र त्याग कर अपनी ऐसी दशा कराई।

अश्व—अंगराज, यह आपने क्या कहा कि इसके लिये अब क्या किया जा सकता है ? सुनिये कि क्या किया जायगा—

जो अतिबलधारी, भारी आयुध धारी हैं,
पांडुचमू में उच्च पदों के अधिकारी हैं,
जितने हैं पांचाल-गोत्र-संभव रण-चारी,
जिनने मचवाई यह गुरु-वध-लीला सारी,
चाहे स्वयं काल ही हों पर छांट छांट कर,
भरदूंगा रणभूमि उन्हीं को काट २ कर,

जो कोई मम सन्मुख निज मुख दिखलावेंगे,
खोवेंगे निज प्राण, किये का फल पावेंगे ।

और हे परशुराम के शिष्य कर्ण,

देश वही है जहां कि पहिले परशुरामने,
पितृ-भक्त, रिपु-विश्व-प्रलय, बल-धर्म-धामने,
क्षत्रिय-कृत अपमान पिता का सहन न करके,
बदला लिया पांच ह्रद रिपु-शोणित से भरके,

वे आयुध मेरे पास हैं
ब्रह्म शक्ति भी है वही,
फिर मैं भी क्रोधित हो वही
कर्म करूंगा क्यों नहीं ?

दुर्यो—हे आचार्यपुत्र, यह कर्म आप के असाधारण वीरभाव के योग्य ही है ।

कृप—राजन्, अश्वत्थामा ने इस दुर्वह समर-भार को अपने शिरपर लेना निश्चय किया है, और यह मैं जानता हूं कि ऐसा होने से यह तीनों लोकों को जीत सकता है फिर युधिष्ठिर की सेना भला बेचारी क्या है? इस लिये इसे सेनापति अभिषिक्त कर दीजिये ।

दुर्यो—प्रस्ताव तो आप का निस्सन्देह उत्तम है परन्तु मैं पहिले अंगराज कर्ण को सेनापति बनाने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं ।

कृप—राजन्, इस घोर गंभीर शोक-सागर में डूबे हुए अश्वत्थामा की कर्ण के लिये इतनी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये—इसे भी उन्हीं शत्रुओं का नाश करना है; क्या इसे दुःख नहीं होगा ?

अश्व— राजन्, कौरवेश्वर ! क्या अबभी युक्तायुक्त का विचार करना है ?

बस आज ही से यह भुवन पांडव-रहित होजायगा,
केशव सहित कुल सोमकों का सदा को सोजायगा,
यह रण-कथा भी पूर्णतः होजायगी निःशेष ही,
भू-भार कम होगा बचेगा अब न रिपुका लेश भी,
अब आप भी निःशत्रु होकर राज-कार्य चलायंगे,
निर्द्वन्द हो, प्रिय अनुज-वर्ग समेत, सब सुख पायंगे।

कर्ण— अश्वत्थामा, कहदेना सहज है परन्तु कर दिखलाना कठिन है; कौरव-सेना में ऐसे बहुत हैं जो यह कर्म कर सकते हैं।

अश्व—अगंराज, कौरव-सेना में बहुत हैं, ठीक है, किंतु मैं दुःख और शोक के कारण ही ऐसा कहता हूं, वीरों पर आक्षेप करने के लिये नहीं।

कर्ण— मूर्ख, दुखी को चाहिये कि शिर पकड़कर रोवे परन्तु क्रोधित जन को शस्त्र लेकर लड़ना उचित है न कि इस तरह प्रलाप करना।

अश्व—(क्रोध से) अरे राधागर्भभार, सूताधम! क्या तू मेरा अपमान करता है ?

कर्ण— होना सूत व सूत-सुत, है सब दैवाधीन,
पर बल, पौरुष, चातुरी, है मेरे आधीन।

अश्व—क्या मुझ दुखी अश्वत्थामा को भी तुमने आंसुओं से बदला लेने की सलाह दी ! देख